



(Shodh Samay International Journal of Multidisciplinary Research)

(Openly Accessible, Peer-Reviewed & Refereed Journal)

समकालीन हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक विमर्श

डॉ. बृजेश कुमार चौहान

म. गां. अं. हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

brijeshchhn@gmail.com

सार-

समकालीन हिंदी साहित्य भारतीय समाज की बदलती सांस्कृतिक संरचना, सामाजिक चेतना तथा वैचारिक प्रवृत्तियों का सशक्त दस्तावेज है। वैश्वीकरण, उदारीकरण, तकनीकी विकास, उपभोक्तावाद, स्त्री-अस्मिता, दलित चेतना, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श तथा प्रवासी अनुभवों ने हिंदी साहित्य को नए आयाम प्रदान किए हैं। समकालीन साहित्य संस्कृति को केवल परंपरा, रीति-रिवाजों और धार्मिक मान्यताओं तक सीमित नहीं मानता, बल्कि उसे जीवन-मूल्यों, सामाजिक संबंधों, पहचान, सत्ता-संरचनाओं, भाषा और स्मृति के व्यापक संदर्भ में देखता है। समकालीन साहित्य केवल सामाजिक यथार्थ का प्रतिबिंब नहीं है, बल्कि वह सांस्कृतिक परिवर्तन, संघर्ष और पुनर्निर्माण की प्रक्रियाओं को भी अभिव्यक्त करता है। वर्तमान समय में संस्कृति का स्वरूप व्यापक हो गया है, जिसमें जीवन-मूल्य, पहचान, भाषा, स्मृति, लैंगिक संबंध तथा सत्ता-संरचनाएँ भी समाहित हैं।

समकालीन हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक विमर्श उन प्रश्नों को केंद्र में रखता है जो समाज के विभिन्न वर्गों की अस्मिता, अधिकारों, सांस्कृतिक पहचान तथा सामाजिक न्याय से संबंधित हैं। स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, आदिवासी-विमर्श, प्रवासी-विमर्श तथा लोक-संस्कृति संबंधी चिंतन ने साहित्य को लोकतांत्रिक और बहुवचनात्मक स्वर प्रदान किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में समकालीन हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक विमर्श की अवधारणा, उसके प्रमुख आयामों तथा भारतीय समाज पर उसके प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। यह शोध-पत्र समकालीन हिंदी साहित्य में उभरते सांस्कृतिक विमर्शों का अध्ययन एवं विश्लेषण करता है तथा यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि साहित्य किस प्रकार भारतीय संस्कृति के संरक्षण, पुनर्पाठ और परिवर्तन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

बीज शब्द- समकालीन हिंदी साहित्य, संस्कृति, सांस्कृतिक विमर्श, वैश्वीकरण, स्त्री-विमर्श, दलित साहित्य

प्रस्तावना-

साहित्य और संस्कृति एक-दूसरे के पूरक हैं। संस्कृति किसी समाज की सामूहिक चेतना, परंपरा, मूल्य, ज्ञान, कला, आचार-व्यवहार और जीवन-पद्धति का संवाहक होता है तथा जबकि साहित्य इन सभी तत्वों का सृजनात्मक प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है। भारतीय संस्कृति अपनी बहुलता, विविधता और समन्वयवादी दृष्टि के कारण विश्व की प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृतियों में गिनी जाती है। समय के साथ सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनों का प्रभाव संस्कृति पर पड़ता है और यही परिवर्तन साहित्य में अभिव्यक्त होते हैं।



(Shodh Samay International Journal of Multidisciplinary Research)

(Openly Accessible, Peer-Reviewed & Refereed Journal)

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध संस्कृतियों में से एक है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ विविधता, सहिष्णुता, समन्वय और बहुलतावाद हैं। किंतु आधुनिक समय में वैश्वीकरण, बाजारवाद, तकनीकी विकास और सामाजिक आंदोलनों ने संस्कृति के पारंपरिक स्वरूप को चुनौती दी है। इन परिवर्तनों का प्रभाव साहित्य पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

समकालीन हिंदी साहित्य का काल सामान्यतः 1980 के बाद से वर्तमान समय तक माना जाता है। इस काल में भारतीय समाज ने तीव्र सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण तथा सूचना-प्रौद्योगिकी के विस्तार को अनुभव किया। साथ ही साहित्य ने समाज के हाशिए पर स्थित समुदायों की आवाज़ को अभिव्यक्ति प्रदान की। इन परिवर्तनों ने सांस्कृतिक मूल्यों, पारिवारिक संरचनाओं, सामाजिक संबंधों और पहचान की अवधारणाओं को प्रभावित किया। परिणामस्वरूप हिंदी साहित्य में नए विमर्शों का उदय हुआ, जिनमें स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, आदिवासी-विमर्श, अल्पसंख्यक-विमर्श, किन्नर विमर्श तथा प्रवासी-विमर्श प्रमुख हैं।

समकालीन हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक विमर्श केवल अतीत की परंपराओं का वर्णन नहीं करता, बल्कि वर्तमान समाज में उत्पन्न सांस्कृतिक संकटों, संघर्षों और संभावनाओं का भी विश्लेषण करता

सांस्कृतिक विमर्श : अवधारणा

‘संस्कृति’ शब्द ‘सम्’ उपसर्ग और ‘कृ’ धातु (कृति) में ‘क्ति’ प्रत्यय के योग से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ है-परिष्कृत, परिमार्जित या उत्तम स्थिति। संस्कृति किसी समाज के जीवन-मूल्यों, विश्वासों, परंपराओं, कला, भाषा, धर्म, ज्ञान और व्यवहार-पद्धतियों का समग्र रूप है। “संस्कृति जीवन जीने का एक तरीका है, जो सदियों से किसी समाज में संचित होकर रहता है।” (डॉ. रामधारी सिंह ‘दिनकर’)

सांस्कृतिक विमर्श का संबंध उन विचारों, प्रक्रियाओं और संरचनाओं से है, जिनके माध्यम से संस्कृति का निर्माण, संरक्षण और परिवर्तन होता है। यह विमर्श संस्कृति को स्थिर न मानकर गतिशील मानता है। समकालीन हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक विमर्श निम्नलिखित प्रश्नों पर केंद्रित है-

- सांस्कृतिक पहचान का निर्माण कैसे होता है?
- परंपरा और आधुनिकता का संबंध क्या है?
- हाशिए के समुदाय अपनी सांस्कृतिक पहचान को कैसे अभिव्यक्त करते हैं?
- वैश्वीकरण का संस्कृति पर क्या प्रभाव पड़ता है?
- परंपरा और आधुनिकता का संबंध कैसा है?
- संस्कृति में सत्ता और वर्चस्व की भूमिका क्या है?

SSIJOMR

(Shodh Samay International Journal of Multidisciplinary Research)

(Openly Accessible, Peer-Reviewed & Refereed Journal)

उद्देश्य-

- समकालीन हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक विमर्श की अवधारणा का अध्ययन करना।
- वैश्वीकरण और आधुनिकता के प्रभावों का विश्लेषण करना।
- स्त्री, दलित और आदिवासी विमर्शों के सांस्कृतिक पक्षों को समझना।
- समकालीन साहित्य में सांस्कृतिक पहचान एवं अस्मिता के प्रश्नों का मूल्यांकन करना।
- भारतीय संस्कृति के संरक्षण और परिवर्तन में साहित्य की भूमिका को स्पष्ट करना।

वैश्वीकरण और सांस्कृतिक परिवर्तन-

सन 1991 के आर्थिक उदारीकरण के बाद भारतीय समाज में वैश्वीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई। विदेशी पूँजी, मीडिया और उपभोक्तावादी संस्कृति ने भारतीय जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया। समकालीन हिंदी साहित्य में इस परिवर्तन का गहरा चित्रण मिलता है। उदय प्रकाश की कहानियाँ, विशेषकर मोहनदास और पीली छतरी वाली लड़की, वैश्वीकरण के दौर में मानवीय मूल्यों के क्षरण और सांस्कृतिक संकट को प्रस्तुत करती हैं। इनके पात्र आधुनिक व्यवस्था में अपनी पहचान और अस्तित्व के लिए संघर्ष करते दिखाई देते हैं। वैश्वीकरण ने एक ओर नई संभावनाएँ प्रदान कीं, वहीं दूसरी ओर स्थानीय संस्कृति, लोकभाषाओं और पारंपरिक मूल्यों के समक्ष चुनौतियाँ भी उत्पन्न कीं। समकालीन साहित्य इन चुनौतियों को गंभीरता से उठाता है।

उपभोक्तावाद और सांस्कृतिक संकट-

समकालीन युग में उपभोक्तावाद एक प्रमुख सांस्कृतिक प्रवृत्ति के रूप में उभरा है, जिसने मानव जीवन के विभिन्न आयामों को प्रभावित किया है। बाजारवादी व्यवस्था ने व्यक्ति को नागरिक से अधिक उपभोक्ता के रूप में स्थापित किया है। विज्ञापन, मीडिया और ब्रांड संस्कृति ने लोगों की आवश्यकताओं, इच्छाओं और जीवन-शैली को नियंत्रित करना शुरू कर दिया है। इसके परिणामस्वरूप पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्य, मानवीय संवेदनाएँ और सामाजिक संबंध कमजोर होते जा रहे हैं। समकालीन हिंदी साहित्य में इस सांस्कृतिक संकट को गंभीरता से अभिव्यक्त किया गया है। अनेक साहित्यकारों ने उपभोक्तावाद से उत्पन्न अकेलेपन, मानसिक तनाव, प्रतिस्पर्धा और संबंधों के विघटन को अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। साहित्य यह संकेत करता है कि अंधाधुंध उपभोग की प्रवृत्ति मनुष्य को उसकी सांस्कृतिक जड़ों से दूर कर रही है तथा सामाजिक और नैतिक मूल्यों के क्षरण का कारण बन रही है।

स्त्री-विमर्श और सांस्कृतिक चेतना-

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक विमर्श के रूप में स्थापित हुआ है। यह केवल महिलाओं के अधिकारों और समानता की मांग तक सीमित नहीं है, बल्कि उन सामाजिक एवं सांस्कृतिक



(Shodh Samay International Journal of Multidisciplinary Research)

(Openly Accessible, Peer-Reviewed & Refereed Journal)

संरचनाओं की भी आलोचना करता है जिन्होंने लंबे समय तक स्त्रियों को उपेक्षित और दोगले दर्जे की स्थिति में रखा। स्त्री-विमर्श ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था, लैंगिक भेदभाव तथा सामाजिक रूढ़ियों पर प्रश्न उठाते हुए स्त्री-अस्मिता और स्वतंत्रता के नए आयाम प्रस्तुत किए हैं।

मैत्रेयी पुष्पा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, प्रभा खेतान तथा मृदुला गर्ग जैसी लेखिकाओं ने अपने साहित्य के माध्यम से स्त्री जीवन की जटिलताओं, संघर्षों और आकांक्षाओं को सशक्त अभिव्यक्ति दी है। मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक' ग्रामीण समाज में स्त्री की सामाजिक स्थिति, उसके संघर्ष और सांस्कृतिक पहचान को उजागर करता है। वहीं प्रभा खेतान का 'छिन्नमस्ता' स्त्री की आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान और स्वतंत्र अस्तित्व की खोज का प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत करता है। स्त्री-विमर्श ने संस्कृति के पुरुष-प्रधान स्वरूप को चुनौती देते हुए समानता, स्वतंत्रता, गरिमा और न्याय जैसे मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।

दलित साहित्य और सांस्कृतिक प्रतिरोध-

समकालीन हिंदी साहित्य में दलित साहित्य एक सशक्त साहित्यिक आंदोलन के रूप में उभरा है। यह साहित्य सामाजिक असमानता, जातिगत भेदभाव और सांस्कृतिक वर्चस्व के विरुद्ध प्रतिरोध की प्रभावशाली आवाज़ है। दलित साहित्य ने उन अनुभवों और जीवन-संघर्षों को अभिव्यक्ति दी है, जिन्हें लंबे समय तक मुख्यधारा के साहित्य और समाज में उपेक्षित रखा गया। इसमें दलित समुदाय के सामाजिक अपमान, शोषण, संघर्ष, पीड़ा और आत्मसम्मान की आकांक्षा का यथार्थपरक चित्रण मिलता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' दलित जीवन के सामाजिक एवं सांस्कृतिक अपमान, भेदभाव और संघर्ष को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार तुलसीराम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' दलित जीवन की विषम परिस्थितियों, सामाजिक बहिष्कार और संघर्षशील चेतना को अभिव्यक्त करती है। मोहनदास नैमिशराय की रचनाएँ भी दलित अस्मिता, सामाजिक न्याय और मानवीय अधिकारों के प्रश्नों को प्रमुखता से सामने लाती हैं। दलित साहित्य ने भारतीय संस्कृति के उस उपेक्षित और पीड़ित पक्ष को साहित्य के केंद्र में स्थापित किया है, जिसे लंबे समय तक दबाया गया।

आदिवासी विमर्श और सांस्कृतिक अस्मिता-

समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श एक महत्वपूर्ण सामाजिक एवं सांस्कृतिक विमर्श के रूप में विकसित हुआ है। आदिवासी समुदायों की अपनी विशिष्ट जीवन-पद्धति, सांस्कृतिक परंपराएँ, लोकाचार, भाषाएँ और प्रकृति-केंद्रित जीवन-दृष्टि रही है। आदिवासी विमर्श इन विशिष्टताओं को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए उनकी सांस्कृतिक अस्मिता और अधिकारों के संरक्षण का प्रश्न उठाता है। यह विमर्श मुख्यधारा के विकास और सामाजिक संरचना में आदिवासी समुदायों के साथ होने वाले शोषण, उपेक्षा तथा भेदभाव को भी सामने लाता है।



(Shodh Samay International Journal of Multidisciplinary Research)

(Openly Accessible, Peer-Reviewed & Refereed Journal)

रमणिका गुप्ता, महाश्वेता देवी तथा हरिराम मीणा जैसे रचनाकारों ने आदिवासी जीवन, संघर्ष, शोषण और सांस्कृतिक चेतना को साहित्य में प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। उनके साहित्य में आदिवासी समुदायों के विस्थापन, जल-जंगल-जमीन से जुड़ाव तथा अस्तित्व की चुनौतियों का यथार्थ चित्रण मिलता है। आदिवासी विमर्श प्रकृति और मनुष्य के बीच सहजीवी संबंध को विशेष महत्व देता है। यह अंधाधुंध औद्योगिकीकरण और विकास के उन मॉडलों पर प्रश्न उठाता है, जिनके कारण आदिवासियों का विस्थापन तथा सांस्कृतिक विघटन होता है।

किन्नर विमर्श और सांस्कृतिक अस्मिता-

समकालीन हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श एक महत्वपूर्ण सामाजिक एवं सांस्कृतिक विमर्श के रूप में उभर रहा है। यह विमर्श किन्नर समुदाय के सामाजिक बहिष्कार, लैंगिक भेदभाव, पहचान के संकट और सम्मानपूर्ण जीवन के अधिकार को प्रमुखता से सामने लाता है। लंबे समय तक हाशिए पर रहे किन्नर समुदाय की आवाज़ को साहित्य ने अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए उनकी सांस्कृतिक अस्मिता और मानवीय गरिमा के प्रश्न को केंद्र में रखा है। इस प्रकार 'किन्नर विमर्श' को केवल किन्नर समुदाय की समस्याओं का साहित्यिक चित्रण मानना पर्याप्त नहीं है। यह उस सामाजिक व्यवस्था की आलोचना भी है जो व्यक्ति की पहचान को केवल स्त्री और पुरुष की पारंपरिक श्रेणियों में सीमित करती है। इस दृष्टि से किन्नर विमर्श लैंगिक पहचान की विविधता, व्यक्ति की स्वायत्तता और अपनी पहचान निर्धारित करने के अधिकार को महत्व देता है। भारतीय संविधान में समानता और गरिमा के मूल्यों के आधार पर इस प्रश्न को विशेष वैधानिक आधार भी प्राप्त हुआ है। सर्वोच्च न्यायालय ने National Legal Services Authority v. Union of India (2014) के ऐतिहासिक निर्णय में किन्नर/ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को 'तृतीय लिंग' के रूप में मान्यता दी तथा उनके लिए समानता, गरिमा और मौलिक अधिकारों के संरक्षण को स्वीकार किया। न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि लैंगिक पहचान व्यक्ति की गरिमा और व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण अंग है।

इस संवैधानिक दृष्टिकोण के पश्चात् किन्नर समुदाय की सामाजिक स्थिति पर विमर्श को नई वैचारिक शक्ति मिली। Transgender Persons (Protection of Rights) Act, 2019 ने भी ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के अधिकारों के संरक्षण, भेदभाव की रोकथाम, पहचान की मान्यता, शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा और कल्याण आदि से संबंधित प्रावधान किए।

हिंदी साहित्य में किन्नर जीवन को केंद्र में रखकर लिखी गई रचनाओं ने इस समुदाय के जीवन की अनेक परतों को उद्घाटित किया है। नीरजा माधव का उपन्यास यमदीप (2002) इस संदर्भ में उल्लेखनीय कृति है। उपन्यास में किन्नर समुदाय के प्रति पारिवारिक उपेक्षा, सामाजिक तिरस्कार, बहिष्कार और अस्तित्वगत पीड़ा को कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। 'यमदीप' का प्रतीक स्वयं इस सामाजिक स्थिति को अर्थ देता है, जिस



(Shodh Samay International Journal of Multidisciplinary Research)

(Openly Accessible, Peer-Reviewed & Refereed Journal)

प्रकार दीपक प्रकाश देने के बावजूद घर के भीतर नहीं, बल्कि बाहर रखा जाता है, उसी प्रकार किन्नर व्यक्ति भी समाज का हिस्सा होते हुए सामाजिक मुख्यधारा से बाहर कर दिया जाता है।

चित्रा मुद्गल का उपन्यास पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा (2016) किन्नर अस्मिता के प्रश्न को पारिवारिक और सामाजिक संबंधों के संदर्भ में सामने लाता है। विनोद/बिन्नी का चरित्र यह प्रश्न उपस्थित करता है कि जन्मगत अथवा लैंगिक भिन्नता के कारण किसी व्यक्ति को परिवार और समाज से अलग क्यों कर दिया जाए। यह कृति किन्नर अस्मिता को केवल करुणा का विषय न बनाकर आत्मसम्मान और सामाजिक अधिकार के प्रश्न से जोड़ती है। इसी क्रम में प्रदीप सौरभ का तीसरी ताली (2014), विजेन्द्र प्रताप सिंह एवं रवि कुमार गोंड द्वारा संपादित कथा और किन्नर (2018) तथा अन्य समकालीन रचनाएँ किन्नर जीवन के विविध सामाजिक और सांस्कृतिक पक्षों को सामने लाती हैं।

लोक संस्कृति और समकालीन साहित्य-

भारतीय संस्कृति की मूल चेतना लोक संस्कृति में निहित है। लोकगीत, लोककथाएँ, लोकभाषाएँ, लोकविश्वास तथा लोकाचार भारतीय समाज की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर हैं। समकालीन हिंदी साहित्य में लोक संस्कृति का पुनर्पाठ विशेष रूप से दिखाई देता है। केदारनाथ सिंह, विजेन्द्र, लीलाधर जगूड़ी तथा मंगलेश डबराल जैसे कवियों ने अपनी रचनाओं में लोक जीवन की संवेदनाओं, परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों को आधुनिक संदर्भों से जोड़कर प्रस्तुत किया है। लोक संस्कृति साहित्य को समाज की जड़ों से जोड़ती है तथा सांस्कृतिक निरंतरता, सामुदायिक चेतना और भारतीयता की भावना को सुदृढ़ बनाती है। इस प्रकार लोक संस्कृति समकालीन साहित्य को समृद्ध और जीवंत बनाती है।

प्रवासी साहित्य और सांस्कृतिक पहचान-

वैश्वीकरण के युग में बड़ी संख्या में भारतीय विभिन्न देशों में बस गए हैं। प्रवासी साहित्य में सांस्कृतिक पहचान, स्मृति, मातृभूमि से जुड़ाव तथा अपनी जड़ों की खोज जैसे विषय प्रमुखता से उभरते हैं। यह साहित्य प्रवासी भारतीयों के जीवन-संघर्ष, भावनात्मक अनुभवों और सांस्कृतिक द्वंद्व को अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

सुषम बेदी, तेजेंद्र शर्मा और उषा राजे सक्सेना जैसे रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में प्रवासी जीवन की जटिलताओं को प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। उनकी कृतियों में दो भिन्न संस्कृतियों के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास, पहचान का संकट तथा अपनी सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखने की चिंता स्पष्ट दिखाई देती है। प्रवासी साहित्य यह सिद्ध करता है कि संस्कृति केवल किसी भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित नहीं होती, बल्कि वह व्यक्ति की स्मृतियों, अनुभवों, भाषा और जीवन-मूल्यों में भी जीवित रहती है।

वैश्वीकरण के दौर में बड़ी संख्या में भारतीय विदेशों में बस गए हैं। प्रवासी हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक पहचान, स्मृति और जड़ों से जुड़ाव के प्रश्न प्रमुखता से उभरते हैं। सुषम बेदी, तेजेंद्र शर्मा और उषा राजे सक्सेना



जैसे रचनाकारों ने प्रवासी भारतीयों के अनुभवों को अभिव्यक्ति दी है। इनकी रचनाओं में दो संस्कृतियों के बीच संतुलन बनाने का संघर्ष दिखाई देता है।

मीडिया, तकनीक और सांस्कृतिक विमर्श

डिजिटल युग में मीडिया और सूचना-प्रौद्योगिकी ने संस्कृति के स्वरूप तथा अभिव्यक्ति के माध्यमों को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। सोशल मीडिया, इंटरनेट और इलेक्ट्रॉनिक संचार ने साहित्य के नए रूपों और पाठकीय संस्कृतियों को जन्म दिया है। समकालीन हिंदी साहित्य में तकनीकी विकास के प्रभाव, आभासी संबंधों, डिजिटल संचार और बदलती जीवन-शैली का यथार्थ चित्रण मिलता है। साहित्यकारों ने डिजिटल संस्कृति के सकारात्मक पक्षों, जैसे ज्ञान के प्रसार और संवाद की सुविधा, के साथ-साथ इसके नकारात्मक प्रभावों, जैसे सामाजिक अलगाव, सांस्कृतिक क्षरण और आभासी निर्भरता, का भी विश्लेषण किया है। समकालीन हिंदी साहित्य में तकनीक के प्रभाव, आभासी संबंधों और सांस्कृतिक बदलावों का चित्रण मिलता है। यह साहित्य डिजिटल संस्कृति के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों का विश्लेषण करता है।

पर्यावरणीय चेतना और सांस्कृतिक विमर्श-

समकालीन हिंदी साहित्य में पर्यावरणीय चेतना एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक विमर्श के रूप में उभरी है। बढ़ते प्रदूषण, वनों की कटाई, जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन ने पर्यावरणीय संकट को गंभीर बना दिया है। साहित्यकारों ने प्रकृति और मानव के बीच संतुलित संबंध की आवश्यकता को रेखांकित किया है। पर्यावरणीय साहित्य प्रकृति को केवल संसाधन नहीं, बल्कि संस्कृति और जीवन का अभिन्न अंग मानता है। यह साहित्य सतत विकास, पारिस्थितिक संतुलन तथा पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करते हुए मानव और प्रकृति के सहअस्तित्व की भावना को सुदृढ़ करता है।

सांस्कृतिक बहुलता और भारतीयता-

भारतीय संस्कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसकी सांस्कृतिक बहुलता है। भारत विविध भाषाओं, धर्मों, जातियों, रीति-रिवाजों और परंपराओं का देश है, जहाँ अनेक सांस्कृतिक धाराएँ मिलकर एक समृद्ध राष्ट्रीय पहचान का निर्माण करती हैं। समकालीन हिंदी साहित्य इस बहुलतावादी स्वरूप को सकारात्मक दृष्टि से प्रस्तुत करता है तथा विविधता में एकता के भारतीय आदर्श को सुदृढ़ बनाता है। साहित्यकार सांप्रदायिकता, असहिष्णुता, जातीय भेदभाव और सांस्कृतिक वर्चस्ववाद का विरोध करते हुए सामाजिक समरसता, सहिष्णुता और लोकतांत्रिक मूल्यों का समर्थन करते हैं। समकालीन साहित्य विभिन्न समुदायों के अनुभवों और संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देकर सांस्कृतिक सह-अस्तित्व की भावना को मजबूत करता है। इस प्रकार हिंदी साहित्य भारतीयता की बहुलतावादी चेतना का सशक्त वाहक है।



निष्कर्ष-

समकालीन हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक विमर्श भारतीय समाज की बदलती संरचना, चुनौतियों और संभावनाओं को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम है। यह साहित्य संस्कृति को स्थिर और अपरिवर्तनीय न मानकर एक गतिशील प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है। वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, तकनीकी विकास, स्त्री चेतना, दलित आंदोलन, आदिवासी अस्मिता तथा पर्यावरणीय संकट जैसे विषयों ने सांस्कृतिक विमर्श को व्यापक बनाया है।

स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, आदिवासी-विमर्श और प्रवासी-विमर्श ने सांस्कृतिक अध्ययन को व्यापक बनाया है तथा उपेक्षित समुदायों की आवाज को मुख्यधारा में स्थान दिलाया है। समकालीन हिंदी साहित्य भारतीय संस्कृति के संरक्षण के साथ-साथ उसके पुनर्मूल्यांकन और पुनर्निर्माण का कार्य भी कर रहा है। इस दृष्टि से यह साहित्य केवल सृजनात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक परिवर्तन का प्रभावी माध्यम है।

संदर्भ सूची-

1. दिनकर, रामधारी सिंह. (सं. 2011). संस्कृति के चार अध्याय. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.
2. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. (पे.बै. 2018). जूठन. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.
3. तुलसीराम. (पे.बै. 2016). मुर्दहिया. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
4. पुष्पा, मैत्रेयी. (1997). चाक. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
5. खेतान, प्रभा. (2010). छिन्नमस्ता. रा नई दिल्ली : जकमल प्रकाशन.
6. प्रकाश, उदय. (2009). मोहनदास. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
7. सिंह, नामवर. (2009). इतिहास और आलोचना. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
8. शर्मा, रामविलास. (1999). भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश. दिल्ली: किताबघर प्रकाशन.
9. मीणा, हरिराम. (2012). आदिवासी दुनिया. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट -.
10. डबराल, मंगलेश. (2024). हम जो देखते हैं. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.
11. सिंह, केदारनाथ. (2019). उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
12. जगूड़ी, लीलाधर. (2003). अनुभव के आकाश में चाँद. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
13. https://books.google.co.in/books?id=QnLu6f72gH0C&printsec=frontcover&source=gs_ge_summary_r&cad=0#v=onepage&q&f=false